फरीदाबाद-गुड़गांव मैट्रो रेल: मंत्री कृष्णपाल का जुमला

मजदूर मोर्चा ब्यूरो

जुमलेबाजी में माहिर भाजपा सरकार के केन्द्रीय मंत्री कृष्णपाल गूजर ने चुनाव से ठीक 100 दिन पूर्व फरीदाबाद-गुड़गांव के बीच मैट्रो रेल चलाने का जुमला छोड़ा है। वैसे यह जुमला कोई नया नहीं है। दो-तीन वर्ष पहले भी उन्होंने यह जुमला छोड़ा था। उस वक्त 'मजदूर मोर्चा' ने सुधी पाठकों को सचेत कर दिया था कि उनके बहकावे में न आयें, क्योंकि यह काम डीएमआरसी (दिल्ली मैट्रो रेल कार्पोरेशन) का है जो इस परियोजना को व्यवहारिक नहीं मानती। वेसे आम आदमी को भी साफ दिखाई दे रहा है कि इस मार्ग पर यह सेवा देना पूर्णतया घाटे का सौदा है और डीएमआरसी घाटे के सौदे नहीं करती।

इसके अलावा डीएमआरसी का नियन्त्रण पूरी तरह से भाजपा की केन्द्र सरकार के आधीन नहीं है। इस पर आम आदमी पार्टी की दिल्ली सरकार का भी नियन्त्रण चलता है जो भाजपा की चुनावी रणनीति के लिए डीएमआरसी को शिकार नहीं बनने देगी। हां, यह सत्य है कि तुगलकाबाद से साकेत मैट्रों स्टेशन तक जोड़ा जा सकता है जो पहले से ही गुड़गांवा से जुड़ा हैं लेकिन इससे कृष्णपाल द्वारा दिखाया जा रहा वह ख्वाब तो पूरा नहीं होता जिससे अरावली व उसके आसपास की जमीनों के भाव उछल सकें।

मंत्री गूजर मैट्रो की ही बात क्यों करते हैं, वे इस मार्ग पर पर्याप्त बस सेवा, जो उनकी सरकार ने जकड़ रखी है, को पर्याप्त रूप से सुनिश्चित क्यों नहीं करते? क्यों नहीं यात्रियों की आवश्यकता के अनुरूप बसें चलवाते, फिर भी यदि इस मार्ग को रेल से जोड़ना ही चाहते हैं तो क्यों नहीं अपने रेल मंत्रालय से रेल सेवा शुरू कराते। इस मार्ग पर न तो खम्बों पर और न ही भूमिगत रेल की जरूरत है तो क्यों नहीं रेलवे से इस मार्ग को जोड़ते।

जहां तक मंत्री जी की जुमलेबाजी का सवाल है तो यह कोई नई बात नहीं है, इससे पहले भी बीते 5 वर्षों में उन्होंने अनगिनित जुमले छोड़े हैं। सबसे बड़ा जुमला तो मंझावली वाला यमुना पुल है। 15 अगस्त 2014 को बड़ी भारी जनसभा करके कृष्णपाल ने केन्द्रीय सड़क मंत्री गडकरी से शिलान्यास कराते हुए कहा था कि दो वर्ष में पुल चालू हो जायेगा लेकिन आज भी उसके हालात बता रहे हैं कि आगामी दो साल तक भी वह पूरा हो जाये तो गनीमत समझो।

दरअसल झूठ बोलकर जनता को बहकाना तो लगभग सभी राजनेताओं का धंधा है परन्तु इस धंधे में भारतीय जुमला पार्टी का कोई मुकाबला नहीं। सारे एक से बढ़ एक महा झूठे हैं।

हरियाणा विधानसभा चुनाव लोकसभा के साथ बाद में सरकार तो डूबनी ही है

मजदूर मोर्चा ब्यूरो

राजनीतिक हल्कों में चर्चा जोरों पर है कि मई 2019 में होने वाले लोकसभा चुनाव के साथ ही हरियाणा विधानसभा के चुनाव भी करा लिये जायेंगे। इसके पीछे तर्क यह दिया जा रहा है कि राज्य में भाजपाई खट्टर सरकार की भद्द इतनी पिट चुकी है कि पार्टी दहाई का आकड़ा भी शायद न छू पाये। ऐसे में उन्हें 'डूबते को तिनके का सहारा' वाली कहावत की तरह पीएम मोदी के नाम का सहारा नजर आ रहा है। भाजपाइयों को लग रहा है कि खट्टर की बजाय लोग मोदी के नाम पर राज्य की भाजपा को भी जिता कर फिर से राज्य में सत्तारूढ़ कर देंगे। लेकिन यह उनकी खाम ख्याली है क्योंकि मोदी की अपनी हालत इतनी पतली है कि उन्हें देश भर से 100 सांसद जिताने भारी दिख रहे हैं। जाहिर है ऐसे में हरियाणा भाजपा का डूबना तय है।

मोदी की हालत पतली होने के पीछे उनके द्वारा बीते 5 वर्ष का रिपोर्ट कार्ड तो है ही जिसमें नोटबंदी, जीएसटी, पेट्रोल की बढ़ती कीमतें, किसानों के साथ धोखाधड़ी व देश की पूरी अर्थव्यवस्था को तहस-नहस कर देना हैं इसके अलावा पार्टी के भीतर से भी उनके विरूद्ध आवाजें उठने लगी हैं। पूर्व मंत्री एवं मौजूदा सांसद यशवंत सिन्हा, शत्रुघ्न सिन्हा सहित 10 सांसद तो शुरु से बोल ही रहे थे परन्तु बीते दिनों राजस्थान, मध्यप्रदेश व छत्तीसगढ़ में पार्टी की हार के बाद तो वरिष्ठ केन्द्रीय मंत्री नितिन गडकरी तक ने भी अपने विरोधी तेवर दिखा ही दिये।

उधर हरियाणा में विधानसभा चुनाव यदि इसके निर्धारित समय अक्टूबर-नवम्बर में कराये जाते हैं तो उससे पहले खट्टर सरकार वैसे ही डूब जायेगी क्योंकि केन्द्र में मोदी की हार के बाद वे सब विधायक उठ खड़े होंगे जो आज सांस रोके व दुबके पड़े हैं। वैसे बीते सप्ताह दक्षिण हरियाणा के चार विधायकों ने तो अपने बागी तेवर दिखा भी दिये हैं। इनमें बावल से मंत्री बनवारी लाल, पाटौदी से विधायक बिमला देवी, कोसली से पूर्व मंत्री एवं विधायक विक्रम ठेकेदार, नारनौल से विधायक ओमप्रकाश है। इन्होंने अपने साथ दो दर्जन अन्य विधायक होने का भी दावा किया है। विदित है कि इन सबको केन्द्रीय मंत्री राव इन्द्रजीत सिंह का आशीर्वाद तो प्राप्त है ही साथ में भिवानी से सांसद धर्मवीर भी इनके समर्थन में आ गये हैं

ये सभी लोग मई 2019 में होने वाले लोकसभा चुनाव में मोदी की हार की प्रतीक्षा कर रहे हैं उसके तुरन्त बाद ये लोग खट्टर को पटकनी देने वाले हैं। इन सबको नजर आ चुका है कि खट्टर की नाव में बैठकर वे आगामी चुनावों की वैतरणी पार नहीं कर सकतें आज के हालात यह है कि खट्टर सरकार के कृषि मंत्री ओमप्रकाश धनखड़ को अपने क्षेत्र रियाया-डाबला गांव में लोगों ने घुसने तक नहीं दिया, उन्हें काले झंडे दिखाकर गांव से खदेड़ दिया। यही हालत वित्तमंत्री अभिमन्यु की भी होने वाली है। उधर शिक्षा मंत्री रामबिलास शर्मा ने भी अपने आपको ताऊ देवीलाल की विरासत का हिस्सेदार बताकर एक बड़ा राजनीतिक संकेत दे ही दिया है।

धर्म और कार्ल मार्क्स

जगदीश्वर चतुर्वेदी

अनेक लोग हैं जो कार्ल मार्क्स के धर्म संबंधी विचारों को विकृत रूप में व्याख्यायित करते हैं। वे मार्क्स की धर्म संबंधी मान्यताओं को गलत देखते हैं फिर सभी मार्क्सवादियों पर हमला आरंभ कर देते हैं। सवाल यह है क्या मार्क्स की धर्म संबंधी मान्यताओं से धर्म की कोई सही समझ बनती है? क्या दुनिया में मार्क्सवादी धर्म के बारे में एक ही तरह सोचते हैं ?

कार्ल मार्क्स ने अपनी धर्म संबंधी मान्यताओं का विकास हेगेल की न्याय संबंधी मान्यताओं के मूल्यांकन के क्रम में किया था। मार्क्स ने लिखा,धार्मिक व्यथा, एक साथ वास्तविक व्यथा की अभिव्यक्ति तथा वास्तविक व्यथा का प्रतिवाद दोनों है। धर्म उत्पीड़ित प्राणी की आह है, एक हृदयहीन संसार का हृदय है, ठीक उसी तरह जैसे वह भावविहीन परिस्थितियों की भावना है। वह जनता के लिए अफीम है। जनता के प्रातिभासिक सुख के रूप में धर्म के उन्मूलन का अर्थ है उसके वास्तविक सुख की माँग करना।मौजूदा हालात के संबंध में भ्रमों का परित्याग करने की माँग उन हालात के परित्याग की माँग करती है जिनके लिए भ्रम जरूरी बन जाते हैं। अत: ,धर्म की आलोचना भ्रूण रूप में आँसुओं की घाटी, धर्म जिसका प्रभामंडल है, की आलोचना है। यानी धर्म के अंत की शर्त है वास्तविक सुखों की सृष्टि,जब तक वास्तविक सुख पैदा नहीं कर पाते तब तक धर्म रहेगा,आम लोगों के दुख रहेंगे और आंसू भी रहेंगे।मार्क्स ने धर्म को 'उत्पीड़ित प्राणी की आह' के रूप में देखा। धर्म के अंत का अर्थ है मनुष्य के दुखों का अंत। इस अर्थ में धर्म और दुख का गहरा संबंध है।

मार्क्स ने धर्म के बारे में लिखा है, "अधार्मिक आलोचना का आधार है: मनुष्य धर्म की रचना करता है, धर्म मनुष्य की रचना नहीं करता है।धर्म मनुष्य की स्व-चेतनता और स्व-प्रतिष्ठा है,ऐसे मनुष्य की जो अभी तक अपने आपको जान नहीं पाया है, या फिर फिर से भटक गया है।लेकिन मनुष्य जिसने इस संसार से बाहर पड़ाव डाल रखा हो,कोई अमूर्त प्राणी नहीं है। मनुष्य तो मनुष्य का संसार,राज्य और समाज है।"

मार्क्स ने धर्म के बारे में लिखा- 'धर्म, संसार का सामान्य सिद्धान्त है,वह इसका सर्वज्ञान गुटका है,इसकी लोकप्रचलित तर्कपद्धति है,इसका आध्यात्मिक कीर्ति शिखर है,इसकी उमंग है,इसकी नैतिक स्वीकृति है,इसका भव्य अभिनंदन है,यह संतोष और औचित्य स्थापना का सार्वभौमिक स्रोत है।यह मानवीय सारतत्व की विलक्षण अनुभूति है, यद्यपि इसके मानवीय सारतत्व में सच्ची वास्तविकता निहित नहीं है। अत: धर्म के विरूद्ध संघर्ष का मतलब है, उस संसार के विरूद्ध किया जाने वाला परोक्ष संघर्ष,धर्म जिसकी आध्यात्मिक सुरभि है। यानी धर्म को समग्रता में देखना चाहिए,उसे अंशों में नहीं देखना चाहिए, इसलिए मार्क्स ने धर्म को 'सर्वज्ञान गुटका' कहा है।धर्म मात्र पूजा या ईश्वर नहीं है,बल्कि उसका एक तर्कशास्त्र है,संस्कार हैं,यह मानवीय सारतत्व की विलक्षण अनुभूति हैं, धर्म के खिलाफ लड़ने का अर्थ है उसके द्वारा रचे संसार के खिलाफ संघर्ष करना।अनेक धर्म विरोधी लोग अपनी संतई चमकाने के लिए धर्म के अंश विशेष की आलोचना करते हैं,लेकिन धर्मरचित समग्र संसार की आलोचना से कन्नी काटते हैं।इस प्रसंग में प्रेमचन्द उल्लेखनीय हैं,उन्होंने लिखा है, इस अनीति भरे संसार में धर्म-अधर्म का विचार गलत है, आत्मघात है और जुआ खेल कर या दूसरों के लोभ और आसक्ति से फायदा उठा कर संपत्ति खड़ी करना उतना ही बुरा या अच्छा है जितना कानूनी दाँव-पेंच से। भारत के देवभक्तों को प्रेमचंद के इस कथन पर गौर करना चाहिए। पढ़ें, 'देवता हमेशा रहेंगे और हमेशा रहे हैं। उन्हें अब भी संसार धर्म और नीति पर चलता हुआ नजर आता है। वे अपने जीवन की आहुति दे कर संसार से विदा हो जाते हैं। लेकिन उन्हें देवता क्यों कहो? कायर कहो, स्वार्थी कहो, आत्मसेवी कहो। देवता वह है जो न्याय की रक्षा करे और उसके लिए प्राण दे दे। अगर वह जान कर अनजान बनता है तो धर्म से फिरता है, अगर उसकी आँखों में यह कुव्यवस्था खटकती ही नहीं तो वह अंधा भी है और मूर्ख भी, देवता किसी तरह नहीं। और यहाँ देवता बनने की जरूरत भी नहीं। देवताओं ने ही भाग्य और ईश्वर और भक्ति की मिथ्याएँ फैला कर इस अनीति को अमर बनाया है। मनुष्य ने अब तक इसका अंत कर दिया होता या समाज का ही अंत कर दिया

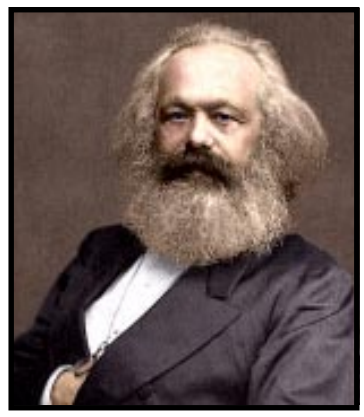

होता जो इस दशा में जिंदा रहने से कहीं अच्छा होता। नहीं, मनुष्यों में मनुष्य बनना पड़ेगा। दरिंदों के बीच में उनसे लड़ने के लिए हथियार बाँधना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं, जड़ता है। आज जो इतने ताल्लुकेदार और राजे हैं वह अपने पूर्वजों की लूट का ही आनंद तो उठा रहे हैं। और क्या उन्होंने वह जायदाद बेच कर पागलपन नहीं किया? पितरों को पिंडा देने के लिए गया जा कर पिंडा देना और यहाँ आ कर हजारों रुपए खर्च करना क्या जरूरी था? और रातों को मित्रों के साथ मुजरे सुनना, और नाटक-मंडली खोल कर हजारों रुपए उसमें डुबाना अनिवार्य था? वह अवश्य पागलपन था। उन्हें क्यों अपने बाल-बच्चों की चिंता नहीं हुई? अगर उन्हें मुफ्त की संपत्ति मिली और उन्होंने उ?या तो उनके लड़के क्यों न मुफ्त की संपत्ति भोगें? अगर वह जवानी की उमंगों को नहीं रोक सके तो उनके लड़के क्यों तपस्या करें?"

न्याय-अन्याय के सवाल आज भी प्रासंगिक हैं इस पर प्रेमचंद ने लिखा, "कहाँ है न्याय? कहाँ है? एक गरीब आदमी किसी खेत से बालें नोच कर खा लेता है, कानून उसे सजा देता है। दूसरा अमीर आदमी दिन-दहाड़े दूसरों को लूटता है और उसे पदवी मिलती है, सम्मान मिलता है। कुछ आदमी तरह-तरह के हथियार बाँध कर आते हैं और निरीह, दुर्बल मजदूरों पर आतंक जमा कर अपना गुलाम बना लेते हैं। लगान और टैक्स और महसूल और कितने ही नामों से उसे लूटना शुरू करते हैं, और आप लंबा-लंबा वेतन उड़ाते हैं, शिकार खेलते हैं, नाचते हैं, रंग-रेलियाँ मनाते हैं। यही है ईश्वर का रचा हुआ संसार? यही न्याय है?"

कथाकार प्रेमचंद ने कुछ सवाल उठाए हैं हम उन भी विचार करें,संसार की कुव्यवस्था क्यों हैं? कर्म और संस्कार का आश्रय ले कर वह कहीं न पहुँच पाते थे। सर्वात्मवाद से भी उनकी गुत्थी न सुलझती थी। अगर सारा विश्व एकात्म है तो फिर यह भेद क्यों है? क्यों एक आदमी जिंदगी-भर बढ़ी-से-बढ़ी मेहनत करके भी भूखों मरता है, और दूसरा आदमी हाथ-पाँव न हिलाने पर भी फूलों की सेज पर सोता है। यह सर्वात्म है या घोर अनात्म? बुद्धि जवाब देती – यहाँ सभी स्वाधीन हैं, सभी को अपनी शक्ति और साधना के हिसाब से उन्नति करने का अवसर है मगर शंका पूछती – सबको समान अवसर कहाँ है? बाजार लगा हुआ है। जो चाहे वहाँ से अपनी इच्छा की चीज खरीद सकता है। मगर खरीदेगा तो वही जिसके पास पैसे हैं। और जब सबके पास पैसे नहीं हैं तो सबका बराबर का अधिकार कैसे माना जाए?

नागरिकों को धर्म मानने और न मानने की आजादी है, ये दोनों संविधान सम्मत हैं। सवाल यह है कि धर्म न मानने वालों से इतनी नाराजगी क्यों ? समाज में ऐसे लोग हमेशा रहे हैं जो धर्म को नहीं मानते,ईश्वर को नहीं मानते और समाज उनको सम्मान की नजर से देखता रहा है। हमारे समाज में धर्मविरोधी को कभी दण्डित नहीं किया गया। दण्ड देने का चलन अंग्रेजों के आने साथ आया है। धर्म का आधुनिकयुग में सबसे बड़ा संरक्षक साम्राज्यवाद है,कारपोरेट घराने हैं। किसान-मजदूर धर्म को नहीं मानते,क्योंकि उनके पास धार्मिक कर्मकांड के लिए समय ही नहीं होता। अधिकांश औरतें भी धर्म के कांडों में शामिल नहीं होतीं। धर्म समाज में प्रतीकात्मक भूमिका निभाता है। धर्म अमीरों का वैचारिक रक्षा कवच है।

मार्क्सवाद को नापसंद करने वालों में एक वर्ग है जो कल्पना और अज्ञानता के आधार पर नापसंद करता है,दूसरे वे हैं जो विचारधारा के आधार पर नापसंद करते हैं, तीसरा वर्ग उन लोगों का है जो व्यक्तिगत कारणों से नापसंद करते हैं। मार्क्सवाद विज्ञान है,विश्वदृष्टिकोण है। यह पसंद-नापसंद से परे मुक्तिमार्ग है। भारत की सामाजिक अवस्था को हम जीतना गहराईसे जानेंगे उतनी ही गहराई में जाकर वाम संगठनों के संघर्षों की प्रासंगिकता,मार्क्सवाद की आवश्यकता को भी महसूस करेंगे। मार्क्सवाद कोई किताबी ज्ञान नहीं है,यह सामाजिक मुक्ति का विज्ञान है। जो लोग कूपमंडूक,अकर्मण्य और संकीर्ण हैं उनमें मार्क्सवाद विरोधी रूझान तेजी से पनपते हैं। विज्ञानसम्मतचेतना का जहां सामान्य वातावरण है वहां मार्क्सवाद विरोधी भावनाएं कम दिखती हैं। यह भी कह सकते हैं नॉनसेंस और मार्क्सवाद विरोध जुड़वां भाई हैं। मध्यवर्ग-निम्नमध्यवर्ग में कूपमंडूकता से लड़ने शक्ति नहीं होती जिसके कारण वह ज्यादा अंधविश्वासी-ईश्वरभक्त होता है। इसके अलावा चाटुकारिता,पुश्तैनी भ्रष्टाचार ,चरित्रहीनता और दीनता भी होती है,जिसके कारण वे सत्ता और शासकवर्गों पर आश्रित होते हैं। सवाल यह है कि मध्यवर्ग की कूपमंडूकता कैसे खत्म हो? हमारे अनेक फेसबुक दोस्त हैं जो मार्क्सवाद का नाम सुनकर भड़कते हैं। कुछ हैं जिनकी भारतीयता ,हिन्दुत्व आदि जाग पड़ते हैं।कुछ हैं जो बिना सोचे ही लिख देते हैं,इन सभी से एक सवाल है समाज में किसका वर्चस्व हो ? किसान-मजदूर का या पूंजीपतिवर्ग अथवा किसी का भी वर्चस्व न हो ? तो कैसे ?

वर्ग और अस्मिता ये दो बड़े आधार हैं सामाजिक गोलबंदी के। अस्मिता का आधार मनुष्य और उसकी मुक्ति को बनाया जाए तो समस्याएं कम हो सकती हैं। सामाजिक मुक्ति के अनेक विकल्प हैं. उनमें एक मार्क्सवाद भी है। लेकिन मुक्ति का एकमात्र विकल्प मार्क्सवाद नहीं है। मात्र वर्गसंघर्ष और वर्ग के आधार पर सामाजिक एकता संभव नहीं है।

जिस तरह भक्ति साहित्य को प्रेम के बिना नहीं सकते वैसे ही लोकतंत्र को धर्म को त्यागे बिना नहीं समझ सकते। धर्म तो लोकतंत्र में महाबाधा है। लोकतंत्र का कुर्बानी के बिना विकास नहीं होता और बाबा रामदेव टाइप लोग बगैर कुर्बानी के लोकतंत्र के चैम्पियन बन जाते हैं। यह संभव नहीं है।

भारत में अनेक लोग हैं जो 'भगवान की खोज' और 'भगवान निर्माण' के काम में लगे हैं। लेनिन के शब्दों में यह देवत्व पूजा की शव-कामुकता है। हेगेल ने कहा था, 'जीवन अन्तर्विरोधों से आगे बढ़ता है। जीवन्त अन्तर्विरोध ,जैसाकि प्रथम दृष्टि में दिखाई पड़ते हैं,कहीं अधिक महत्वपूर्ण,विविध एवं गहन होते हैं।

लेनिन का मानना है ,'काम और संघर्ष किए बगैर पुस्तिकाओं से प्राप्त कम्युनिस्ट ज्ञान बेकार है ,क्योंकि यह सिद्धान्त और व्यवहार के पुराने अलगाव को जारी रखेगा तथा पूंजीवादी समाज का अत्यधिक घातक लक्षण उस दरार को बनाए रखने में मदद देता है।लेनिन का मानना था- "आप कम्युनिस्ट तभी हो सकते हैं जब आप मानवजाति द्वारा निर्मित सम्पूर्ण ज्ञान के खजाने से सम्पन्न हों।" मार्क्स-एगेल्स का मानना था- आदर्श की कसौटी आर्थिक वास्तविकता होती है।

मार्क्स-एंगेल्स ने इसी आदर्श को सामने रखकर अपना व्यवहारिक कार्य किया। यही वजह है कि उन्होंने पूंजीपतियों की सेवा करने की बजाय उत्पादक शक्तियों की आत्मचेतना को विकसित करने का काम किया। मार्क्स-एंगेल्स का एक साझा आदर्श था- आवश्यकता को स्वतंत्रता के अधीन बनाने,अंधी आर्थिक शक्तियों को मानव बुद्धि के अधीन बनाने का आदर्श।

आधुनिककाल में धर्म का उपभोक्तावाद और पूंजीप्रेम सबसे बड़ा ईंधन है। इन दोनों के बिना धर्म जी नहीं सकता। धर्म वैचारिक और भौतिक दोनों ही स्तरों पर उपभोक्तावाद और पूंजी की मदद करता है यही वजह है धर्म की जड़ें उन वर्गों में ज्यादा गहरी हैं जहां उपभोक्तावाद और पूंजीप्रेम खूब फल-फूल रहा है। जिस तरह धर्म जनता के लिए 'आत्मिक शराब हैंठीक उसी तरह उपभोक्तावाद और पूंजीप्रेम लत है। दोनों में मातहत बनाने की प्रवृत्ति है।

धर्म कोई विचार मात्र नहीं है,उसकी सामाजिक जड़ें हैं,धर्म की समाजिक जड़ों को सामाजिक संघर्षों में जनता की शिरकत बढ़ाकर ही काट सकते हैं।धर्म के खिलाफ संघर्ष यदि मात्र वैचारिक होगा तो वह भाववादी संघर्ष होगा,धर्म भाववाद नहीं है,वह तो भौतिक शक्ति है। उसे अमूर्त्त विचारधारात्मक उपदेशों के जरिए नष्ट नहीं किया जा सकता। एक मार्क्सवादी को यह पता होना चाहिए कि धर्म का मुकाबला कैसे करें? इस मामले में उनको बुर्जुआ भौतिकवादियों से अलगाना चाहिए। बुर्जुआ भौतिकवादियों के लिए धर्म का नाश हो,अनीश्वरवाद चिरंजीवी हो, नास्तिकता अमर रहे, का नारा प्रमुख है, वे आमतौर पर अनीश्वरवाद का ही जमकर प्रचार करते हैं,इस तरह के नजरिए की लेनिन ने तीखी आलोचना की है और उसे छिछला दृष्टिकोण कहा है।

लेनिन के शब्दों में यह बुर्जुआ जागृति का 'संकीर्ण नजरिया है। इससे धर्म की जड़ों के बारे में पूरी जानकारी नहीं मिलती। इस तरह की धर्म की व्याख्याएं भाववादी हैं,इनका भौतिकवाद से कोई लेना-देना नहीं है। लेनिन ने धर्म के बारे में लिखा है 'आधुनिक पूंजीवादी देशों में इसकी जड़ें मुख्यत:सामाजिक हैं। पूंजी की अंधी ताकत का भय-अंधी इसलिए क्योंकि व्यापक जनसमुदाय इसका पूर्वानुमान नहीं कर सकता-एक ऐसी शक्ति जो सर्वहारा और छोटे मालिकों के जीवन के हर चरण में प्रहार का खतरा पैदा करती तथा 'औचक','अनपेक्षितं','आकस्मिकं',तबाही ,बर्बादी,गरीबी,वेश्यावृत्ति,भुखमरी का हमला करती है. आधुनिक धर्म की जड़ यहां है।इसे भौतिकवादियों को सर्वप्रथम अपने दिमाग में रखना चाहिए. जनता के दिमाग से धर्म को मिटाने के लिए जरूरी है उसे जनसंघर्षों के लिए तैयार किया जाए,जनता खुद धर्म की जड़ें खोदना सीखे,संगठित हो,सचेत रूप में पूंजी के शासन के तमाम रूपों से लड़ना सीखे। जब तक वह ऐसा नहीं करती तबतक जनता के मन से धर्म को मिटाना संभव नहीं है।